अध्याय : द्वितीय

'धूणी तपे तीर' उपन्यास में अभिव्यक्त आदिवासी चेतना

अठारहवीं एवं उन्नीसवी सदी भारतीय इतिहास में नयेअध्याय जोड़ने वाली सदियाँ है। इन सदियों में भारतीय समाजों में परिवर्तन का समय शुरू होता है है। जिससे उन समाजों में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक स्तर पर परिवर्तन आता है। इस परिवर्तन से भारीतय आदिवासी समाज की अछूता नहीं रहा। आदिवासी समुदाय भी इन परिवर्तनों से प्रभावित होता है क्योंकि आदिवासी समुदाय हिन्दू संस्कृति से प्रभावित हुआ था। ऐयप्पन और मजूमदार लिखते है कि 'आदिवासी समुदायों ने अपने निकट हिन्दू ग्रामीण समुदायों की संस्कृति और भाषा से संबंध जोड़ा।'[1]

'आदिवासी समुदायों में संस्कृतिकरण' का प्रभाव करीब-करीब अठाहरवीं सदी में आरंभ हो गया।'[2] 'दक्षिणी राजपूताना और गुजरात के सीमावर्ती प्रदेशों में गोविन्द गिर ने आदिवासियों में सामाजिक, धार्मिक सुधार और आर्थिक स्थिति में गत्यात्मक परिवर्तन लाने हेतु एक आन्दोलन चलाया। यह घटना बीसवीं सदी के प्रारंभिक दशकों की है।'[3]'गोविन्द गुरु ने अपने प्रिय शिष्य व साथी आदिवासी-हितैषी पूंजा के साथ मिलकर संप सभा के माध्यम से लगभग तीन दशकों तक सतत् क्रियाशील रहकर आदिवासियों में जागृति लाने का कार्य किया।'[4] गोविन्दगुरु अपने बचपन से ही आदिवासियों के दुःखों के चिंतित थे। भील मुखिया द्वारा कही बातों से स्पष्ट होता है कि गोविन्द गुरु आदिवासियों में चेतना लाने के व्याकुल हो रहे थे। अपने बचपन में अपने इलाके के भील मुखियों से ये बाते 'अपने ही साधन-सामान से बे मतलब परेशान किया जाता है। बगैर महेताना दिए खूब काम करवाया जाता है। काम मे इतना परिश्रम करवाया जाता है कि हमारे लोगों के सोचने की क्षमता निष्क्रय हो जाती है। इसलिए हमारे लोग अपनी थकान मिटाने के लिए नशे में लिप्त हो जाते है, अपने परिवार

वालों के लिए परेशानी का कारण बन जाते है। अपने बच्चों और औरतों को परेशान करते, मारते पीटते हैं। इस पर हमें सोचना चाहिए। यदि ये नशे की लत मिट जाए तो हमारा समाज खुशहाल जिंदगी व्यतीत कर सकता है। हम लोगों का जीवन ही सुधर जाऐगा।'[5]इसलिए गोविन्द गुरु अपने आदिवासियों को कहते हैं कि 'आप लोगों के जीवन में इतनी समस्याएं है कि जिन्हे सहजरूप से स्वीकार का जीवन जीना बड़ा कठिन है। इनके समाधान पर विचार करने की बजाय आप लोग इन्हें भूलने की कोशिश करते हो। जिसके लिए शराब पीने की आदत बना ली। प्राकृतिक वस्तुओं का सदुपयोग करना सीखो। जिनमें महुआ प्रमुख है। इसकी सब्जी बनाकर और तेल निकालकर अपनी समझदारी का परिचय दो, यह तुम लोग के लिए कल्पवृक्ष की भाँति है। शराब मत बनाओ। कर्म करते रहो। मेहनत पर विश्वास करो। चोरी मत करो। ईमानदारी से जीवन जीना सीखो। इसी से आप के समाज की उन्नति होगी।'[6]इस प्रकार गोविन्द गुरु ने आदिवासियों में नशे के प्रतिजागृति फैलाना आरंभ किया।'विशेषरूप से शराब के प्रचलन पर एक व्यापक मुहिम चलाई, जिसका परिणाम यह हुआ कि रियासती इलाकों में शराब की खपत में भारी गिरावट दर्ज हुई। अकेले बाँसवाड़ा रियासत में सन् 1913 में जहाँ शराब की खपत 18,740 गैलन थी अब घटकर 5,154 गैलन रह गई।'[7]

'शराब के नशे को गोविन्द गुरु तन-मन के काल मानते थे। नियंत्रित मात्रा में किया सेवन शरीर के लिए लाभकारी है लेकिन लत लगा लेना बेहद हानिकारक है।'नियंत्रित अथवा निश्चित समय और मात्रा में किया गया सेवन सांस के मरीज को अवश्य राहत पहुंचाता है।'[8] आदिवासियों मे नयी चेतना फूंकने वाले गोविन्द गुरु मूर्तिपूजा में कम ही विश्वास करते थे बल्कि वे मानव धर्म के सच्चे समर्थक थे। दीक्षा गुरु जो उनके बचपन में गुरु थे, राजगिरी गोसाई व मावजी के निष्कलंक समुदाय के गोविन्द गुरु प्रथावित थे। भारतीय भक्ति परम्परा मावजी- रैदास, दादू, व नरसी महेता आदि की परम्परा से संबंध रखते है।

एक बार गोविन्द गुरु आदिवासियों को बेगार प्रथा का विरोध करने व अपने अधिकारों के प्रति सचेत करते है। बेगार प्रथा के निरोध में एक व्यक्ति इसे अपने पारम्परिक कर्म से जोड़ता जवाब देता है। तब गोविन्द गुरु समझाते है 'परम्परा में बहुत कुछ होता आया है। व्यापारिकवर्ग को अपने इलाके में से सही-सलामत गुजारने के लिए आदिवासी समुदाय इसके एवज में 'रखवाली' और 'बेलाई' की वसूली सैकड़ों सालों से करते आए हैं। प्राप्त रकम का गांव या समुदाय के जनहित में उपयोग किया जाता था। लेकिन आजकल राज ने इस पर रोक लगा दी। यह जमीन हमारे बाप-दादों की पुश्तैनी है। इस जमीन पर ही हम अपना जीवन निर्वाह करते आए है। झाड़ झंखाड का उन्मूलन कर अपने खेत और घर बनाते आए है। इस प्रकार यहां सब कुछ हमारा है तो लगान किस बात की ली जाती है। इन जंगलों से प्राप्त उपजों पर हमारी ही तोहक है। फिर राज इन जंगलों के प्राप्त उपजों का ठेका देता है। मेरे समुदाय के लोग पुश्तों से नमक का व्यापार करते आए हैं। राज ने हमारे इस व्यापार पर भी पाबंदी ठोक दी। इसी तरह महाजन लोग साहूकार लोग हमें रात दिन अर्थिकरूप से लूटते रहते हैं।'[9]

भूमि बंदोबस्त कर कृषि कर में वृद्धि करना वनोपज पर पाबंदी लगाना आबकारी नीति, वांगड़ प्रदेश से गुजरने वाले व्यापारिक मार्गों पर नियंत्रण, नमक के स्वतंत्र उत्पादन व और व्यापार पर नियंत्रण आदि ऐसे विषय जिन पर आदिवासीजन धीरे-धीरे विरोध करने लगे।

इन विषयों पर मंत्रणा करने हेतु विभिन्न पालों के आदिवासियों का एक प्रतिनिधि मंडल उदयपुर महाराणा सज्जन सिंह के दरबार पहुंचा। दरबार में उनहें किसी प्रकार का संतोज जनक उत्तर नहीं मिला। परिणाम यह हुआ कि आदिवासियों में राज काज के प्रति शंका पैदा होना शुरु हो गयी। अब आदिवासी जन राज की शोषण भरी नितियों को धीरे-धीरे व्यापक स्तर पर समझने लगे।

गोविन्द गुरु वागड़ अंचल में धार्मिक गुरु के रूप में पहचाने जाने लगे। अब वे गोविन्द गिरी से गोविन्द गुरु बन गए। आदिवासियों के प्रति गहरा प्रेमभाव और आदिवासियों का गोविन्द गुरु के प्रति श्रद्धा भाव दिनोंदिन बढ़ता गया।

पूंजाधीरा जो गोविन्द गुरु का परम मित्र और शिष्य था। जिसने संप सभा नामक 1870 ई0 में एक संगठन बनाया। जिसमें उसके चुनिंदा साथियों का योगदान था। लेकिन पूंजाधीरा का यह संगठन सचारु रूप से नहीं चल पाया।

1883 ई0 में गोविन्द गुरु ने संगसभा का पुनः गठन किया। सामूहिक स्तर पर आपसी भाईचारे का भाव रखकर चलने के लिए वागडी बोली में 'संप' शब्द प्रयुक्त होता है। इस सभा के गठन हो जाने के बाद गोविन्द गुरु की लोकप्रियता और ख्याति में वृद्धि हुई। 'जय गुरुदेव' शब्द का प्रचलन हुआ। आदिवासी समुदाय में एक दूसरे के अभिवादन का माध्यम बना गया। धीरे-धीरे इस शब्द का अर्थ आदिवासी एकता से परिणत होता गया।

'सम्पसभा' का मूल उद्देश्य सामाजिक स्तर पर आपसी सोहार्द्र का भाव विकसित करना था। साथ ही आदिवासी समाज में व्याप्त बुराइयों से मुक्ति दिलाना था। जिससे आदिवासी समाज खुशहाली भरा जीवन जी सके। शराबखोरी से मुक्ति, आपसी विवादों का सुलझाव, शुद्ध दिनचर्या, आपराधिक प्रवृतियों से दूरी, परम्परागत पूर्वज के स्थान पर एकेश्वरवाद में विश्वास, भक्त बन चुके लोगों द्वारा गले में रूद्राक्ष की माला धारण करना। हवन आदि के माध्यम से वैचारिक शुद्धता लाना आदि कार्य-कलाप सामाजिक-धार्मिक सुधारों के परिगणित थे।'संप सभा' का एक प्रमुख भजन है जिसे आदविासी समुदाय द्वारा विभिन्न पर्वों के अयोजनों के समय गाया जाता था। इस गीत के बोल इस प्रकार है -

"सब हली भली ने संप मे रे जो रे मारा भाई
एक वीजा ने हाथे लई ने चाल जो रेमारा भाई
भगती ने भणजी कर जो रे मारा भाई
सब हली मली ने रे जो रे मारा भाई.....।"[10]

गोविन्द गुरु संपसभा के द्वारा अपने भक्तों को समय-समय पर सचेत करते रहते है। वे कहते हैं कि जो भी व्यक्ति सच्चे मन और तन से इस सभा का सदस्य और भक्त है। उस के

लिए आवश्यक है कि 'वे साफ-सफाई का विशेष ध्यान रखे, नशे से दूर रहे, शुद्ध खान-पान रखे, वृक्षों के प्रति सद्भाव रखे बेगारी नहीं करे, प्रातः उठकर दातुन करें, पानी को कम-से-कम तीन-चार बार छानकर पीए, हाथों को मिट्टी से अच्छी तरह साफ करें, स्नान आदि का ख्याल रखे, खाना ढ़ककर रखे, आपसी प्रेमभाव में रहना, भाईचारा बढ़ाना और किसी के दिल को ठेस नहीं पहुंचाए।'[11]

सम्पसभा के माध्यम से गोविन्द गुरु आदिवासियों में चेतना जागृत करते हैं। जगह-जगह विभिन्न प्रकार के सम्मेलन आयोजित करवाते थे। इन सम्मेलनों का मुख्य उद्देश्य संपसभा के सच्चे कार्यकर्ता तैयार करना व बेसहारे आदिवासियों की सेवा करना था। जिसका प्रमुख उदाहरण 'छप्पन्या काला' में की सेवा है जिसमें उनके सच्चे भक्त पूजा धीरजी, कुरिया दानोत, नानजी गरासिया, सुरत्या मीणा, कलजी, थानू लाल, जोरजी लखजी लेखा आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं।

गोविन्द गुरु अपने उद्देश्यों को पूरा करने हेतु एक निश्चित जगह मानगढ़ पहाड़ी का चयन करते है। जहां पर दीपावली के त्योहार के बाद खास शिष्यों, भक्तों व सहयोगियों के साथ अपने आप को स्थापित कर लिया। पूंजाधीरा, जेता, बाला, लेम्बा, जोहरजी, हीरजी, कुरिया आदि शिष्य व उनके साथ थे। मानगढ़ पहाडी पर लम्बा विचार-विमर्श हुआ। सदस्यों में कार्य विभाजन की नियत योजना बनी। सम्पसभा के अपने आपमें एक विशेष सभा थी जिसके नौ विभाग थे'[12] संपसभा

1. धूणियों की स्थापना (प्रभारी सुन्दराव निवासी लेम्बा भक्त
2. जल प्रंबंधन (प्रभारी कलजी भीमा)
3. चिकित्सीय व्यवस्था(मनुष्य व पशुओं) (प्रभारी, जेता भक्त)

4. धार्मिक क्रिया कलाप, जिसमें पूजा पाठ व धार्मिक प्रचार आते है (प्रभारी जोरजी भक्त)

5. नैतिकता व रचनात्मकता के स्तर पर सद्गुणों का विकास (प्रभारी जोरजी भक्त)

6. आदिवासी अंधविश्वास और कुप्रथाओं से संबधित गलत आदतों से मुक्ति हेतु कार्यकर्ता और भक्त बनाना।

7. गुप्तचर व्यवस्था कायम करना (प्रभारी झाड़कड़ा गाँव निवासी थावरा)

8. अंतिम संस्कार व उसके बाद के क्रिया कर्म संबधि क्रियाकलाप(प्रभारी बाला भगत को बनाया गया)

9. नयें आदिवासी युवाओं को प्रशिक्षित कर रक्षा बदलों का गठन करना(प्रभारी पूंजाधीरा सहयोगी सदस्य थावरा)

अब वागड़ अचंल में गोविन्द गुरू की जाति धार्मिक गुरू के साथ संगठन कर्ता के रूप में भी फैलने लग गई। वे शिक्षित होने और स्वदेशी अपनाने जैसी बातों बताने लगे। विलायती वस्तुओं कों फिंरगियों की संस्कृति का पोषण करने वाली बताया। इसलिए विलायती वस्तुएँ तात्य है। अपने समुदाय के झगड़ो को राज के पुलिस थाने व कचहरियों से दूर रखों। वहाँ हमारी लूट होती है। सामूहित स्तर पर बने पंच पंचायतो से उनका निपटारा करो। गोविन्द गुरू प्रांरभिक वर्षो में अपने अन्य नायको जिनमें पूंजा, धीरजी, कुरिया दानोंत, नानजी गरासिया के साथ थानूलाल, कलनी, जोरजी लखपी, लेम्बा नगजी के नाम शामिल है, अपने आस पास के इलाके में लोकप्रिय हो चुके थे। अंग्रेजो ने जोरिया भक्त को फाँसी पर लटका दिया क्योंकि जोरिया और उसके साथी सम्प सभा के सच्च कार्यकर्ता होने के नाते संप सभा के कार्यो का प्रचार प्रसार कर रहे थे। पुलिस वालो को यह अनुचित लगा और वह इनका विरोध करने लगे तभी उनके सहयोगी गललिया ने आवेश मे आकर तलवार से पुलिस वाले की गर्दन धड़ से

अलग कर दी। पुलिस ने रूपा जोरिया व गललिया को मौत के जुर्म में गिरफ्तार कर लिया गया। अंग्रेजी सरकार ने तीनों साथियों पर अदालत में राजद्रोह का मुकदमा चलाया। यह अंगे्रजी सरकार का एक पड़यंत्र था। अदालत ने तीनों को राजद्रोह के मुकदमे के दोषी करार दिया। और तीनों को फाँसी की सजा दे दी। इसी के समानान्तर मध्यप्रदेश के टंट्या मामा को भी अंग्रेजी सरकार नेफाँसी पर लटका दिया। टंट्या मामा आदिवासी समुदाय में गरीब परिवारों की लड़कियों की शादी में भरपूर सहायता करता था। इसलिए आदिवासी समुदाय इन्हे टंट्या मामा के नाम से पुकारने लगा। अब टंट्या मामा हजारों आदिवासीयों के हृदय में बसने लग गया। आदिवासी लोग उनके समर्थक बनते गए। अंग्रेजी सरकार ने भी उन्हें फंसी तो दी लेकिन उनके शौर्य को सम्मान दिया।इसलिए

"टंट्याके जीवन कल में ही अंगेजों ने उसे नाम दिया वह था इंडियन रॉबिन हुड।"[14]

गोविन्द गुरू की ख्याति में दिनोंदिन बढोतरी होती रही थी। आंतड़ी, मोबाइ, तामता के साथ अब सम्पूर्ण आदिवासी अंचलों में डूंगरपुर, बांसवाड़ा, मतरामपुर, सूंथ, उदयपुर, प्रतापगढ़ आदि रियासतों में लोकप्रिय हो गए।

अंग्रेजी सरकार आदिवासी समुदाय पर नियंत्रण स्थापित करने हेतु जरायम पेशा कानून बनाती है जिसे सर्वप्रथम 12 अक्टूबर, 1871 ई. को बोम्बे प्रेसिडेंसी में लागू किया। जिसके तहत 12 वर्ष के ऊपर आयु वाले प्रत्येक आदिवासी व्यक्ति को पुलिस थाना में अपनी उपस्थिति दर्जा करनी आवश्यक थी। यदि अपने कार्य के सिलसिले में एक स्थान से दूसरे स्थान जा रहा है तो उसे यहाँ व वहाँ के संबधिन पुलिस थाने आवश्यक सुचना व उपस्थिति देनी होती थी। सरकार द्वारा राज्यपाल को प्रस्ताव देवर किसी भी आदिवासी समुदाय को आपराधिक समुदाय घोषित किया जा सकता था। इस तरह आदिवासीयों पर अत्याचार आरम्भ हुआ।

"यह कानून सर्व प्रथम बोंबे प्रसीड़ेंसी में 1871में लागु किया गया। जिसके तहत कोड़े मारे जाते,जूतों से पिटाई की जाती, पेड़ों पर उल्टा लटकाया जाता। कई उदाहरण ऐसे भी सामने आये जब उनके पांव काट दीये जाते ताकि वें कहीं घूम फिर न सके।"[16]

मेवाड मील कोर के कार्यवाहक कमांडेट जें.पी. स्टाक्ले अपने उद्देश्यों को पूरा करने हेतू निंरतर तैयार हो रहे थे। मानगढ़ पहाड़ी पर हो रही गतिविधियों की जानकारी लेने हेतु 30 अक्टूबर,1913 ई. को दो सिपाहियों को वहाँ भेजा गया। शासन के शोषण से दबे और उत्याचारों से अघाये आदिवासीयों ने वहाँ पहुंचे सिपाहियों को पकड़कर उनके साथ मारपीट कर दी। कुछ समय पश्चात आदिवासी प्रतापगढ़ रियासत के सूंथ किले से जा भिड़े। लेकिन हताशा हाथ लगी। इन घटनाओं से वहां का शासन तंत्र घबराया और अपने आप को सचेत किया। लेकिन एक बार भय आने के बाद निकलना मुश्किल होता हैं। इसलिए इन रियासतो(सूंथ, डूंगरपुर, बांसवाड़ा व ईडर) ने अंग्रेजी सरकार से प्रार्थना की कि हमें आदिवासीयों को कुचलने में सहायता प्रदान करे। गोविन्द गुरू अपने कर्म क्षेत्र में अटल विश्वास के साथ टिके रहे क्योकि महारावल विजय सिंह ने अपैल 1913 ई को गोविन्द गुरू को गिरफ्तार कर इस आशय से छोड़ देते है कि वे डूँगरपुर राज्य में प्रवेश नही करेगें। लेकिन वे अपनी बात पर अडिग रहे। उन्होंने डूँगरपुर राज्य में प्रवेश किया तो वहाँ के शासन तंत्र ने इनकी धूणियो को नष्ट किया, शराब पीकर अपवित्र किया। आदिवासीयों में असीमित भय पैदा करने की कोशिश की गई। इतना सब कुछ होन के उपरान्त भी गोविन्द गुरू ने अपना लक्ष्य नहीं बदला बल्कि अपने कार्यो को सम्पन्न करने व कराने और ज्यादा सक्रियता दिखाई। आदिवासी समुदाय मील, मीणा, गरासिया आदि की दशा में सुधार होने लगा। डा0 ब्रज किशोर शर्मा लिखते है ''उनके इन प्रयासों से भील अपने अंधकार पूर्ण प्राचीनतम एंव असभ्य हालात से उभरने लगे।"[17]

संस्कृति का राज्य ‘‘सम उपसर्ग के साथ संस्कृत की (डू) कृ (ञ) धातु से बना है। संस्कृति का अर्थ चिंतन तथा कलात्मक सर्जन की क्रियाएं समझनी चाहिए, जो मानव व्यक्तित्व और जीवन के लिए साक्षात् उपयोगी होते हुए उसे समृद्थ बनाने वाली है।’[18] इस प्रकार संस्कृति हमारी विचार प्रणाली का सुगठित स्वरूप है जो हमारे विभिन्न क्रिया कलापों में परिलक्षित होता है। वर्धा हिन्दी शब्द कोश में ‘परम्परा से चली आ रही आचार विचार प्रणाली के साथ संस्कार व रहन सहन जीवन पद्धाति को संस्कृति माना है।’[19] इस प्रकार कह सकते है कि किसी देश के मानव समुदाय के विशेष आचार विचार का समान्वय भाव ही संस्कृति है। आचार अथवा आचरण में भौतिक सभ्यताओं के आदि संस्कार सम्मिलित होते हैं तथा खानपान व रहन सहन के तरीके सत्कारी भावनाएँ समुदाय अथवा जाति विशेष का बाहरी ढाँचा/रूप। विचार का अर्थ अभौतिक सभ्यता के आदिम संस्कारों को सम्मिलित करते है। यथा विश्वास, कला, दर्शन, साहित्य वैचारिक मूल्य और चिंतन परपराएँ आदि। पारिवारिक परम्पराएँ जिनमें विभिन्न रस्में-रिवाज और विवाह संस्कार यज्ञकर्म आदि अपना महत्व रखते है। हरिराम मीणा कृत उपन्यास ‘घूणीतपे तीर‘ में वागड़ अंचल की अनूठी लोक संस्कृति का पर्याप्त चित्रण हुआ है। वहाँ के आदिवासी जीवन दर्शन, लोकगीतों, धार्मिक अनुष्ठानों व सामाजिक क्रियाकलापों को पर्याप्त जगह दी है। कुछ परम्परा समाज के लिए विनाश का कारण बनती है लेकिन वे लम्बे समय से चली आ रही होती है।इसलिय उन्हें नकारना आसान भी नहीं होता। इस प्रकार उसी रूढ़ीवादी परंपरा को हटाना गोविन्द गुरु आवश्यक मानते है। सम्प सभा और भक्त आन्दोलनने इस कार्य में अग्रणी भूमिका है।

‘‘दरअसल, यह काम भगतों के माध्यम से समाज सुधार का महत्वपूर्ण कार्य था। जिसमें कुप्रथाओं, अंधविश्वासों और बुरी आदतों से मुक्ति शामिल थी।’’[20]

आदिवासी परम्परा में सामूहिक नृत्यों का प्रचलन है। जिसमे लड़के-लड़कियाँ और स्त्री पुरूष साथ मिलकर नाचते हैं। यह नृत्य अधिकांश मेलों-त्योहारों पर होते हैं।(मानगढ़ की

पहाड़ी पर अलग-अलग पालों के आदिवासी नृत्य में झूम रहे थे) गोविन्द गुरु ने आदिवासी को एकत्र हो कर नाचने खेलने कुदने अपने विकास की भावी योजना बनाने के लिए एक उचित जगह उपलब्ध करवा दी वो वह जगह थी –मानगढ़ पहाड़ी। मानगढ पर अलग-अलग पालों के आदिवासी नृत्य कर रहे थें।

"हाथजोड़िया पगपासणियाना जालणियाना, उडणियाना, पादुकचाला, मुरिया, गैर गवारी आदि नृत्य के साथ गीत भी गए जाते थे। "[21]

गीतो के साथ वाद्ययंत्रो का उपयोग लिया जाता था मांदल, झांझ, खरताल, थाली, मटका, ढोलक, सुषिर वाद्य यंत्र में बासुरी का उपयोग किया जाता था। इसी क्रम में पादुकचाला नृत्य के गीत गूंज उठे-

''काली रे कोयलड़ी ते बन बगड़े ने गयी ती रे
वन बगड़ा में रेती ने वन वेणी खाती रे
आयवो रे।"[22]

इन नृत्य गीतों का प्रभाव रह था कि एक तरफ तो आदिवासी शासन तंत्र से सताये जाने के उपरान्त भी सांस्कृतिक संदर्भो को जीवित रखते है। दूसरी तरफ विवाह पूर्व सगाई की रस्म के लिए मेले त्योहांर बड़े कारगर साबित होते है क्योंकि इन मेले त्योहारों में अनजान युवक युवतियाँ आकर्षित होते थे। यही आकर्षक धीरे धीरे सगाई संबंधों तक पहुँच जाता। बड़े बुजुर्गों की मध्यस्ता से रस्मों को पूरा किया जाता। इन्ही मेलों की एक खास विशेषता थी। आपसी प्रेम और भाईचारे की भावना का बढावा देना। इसका जीता जागता उदाहरण था संप सभा का यह भजन

''सब हली मली ने सम्य मे रें जो मीरा भाई
एक वीजा ने हाथे लाई ने चाल जो रे मीरा भाई

भगती ने भणती करजो रे मीरा भाई

सब हली मली ने रेजो रे मारा भाई.....।"[23]

आदिवासीयों की अपनी मौलिक संस्कृति है। इस मौलिकता में नया जुड़ना अहम बात है। इसका कारण "आदिवासी जीवन दर्शन में निरन्तरता एंव गत्यात्मकता रही है। यही कारण है कि शास्त्रीय प्रतिमान नहीं बनाये जा सकते है।[24]

मिथक आदिवासी परम्परा के वाहक है जो यह जानकारी देते है कि आदिवासी संस्कृति कितनी पुरानी है। इसलिए 'घूणी तपेतीर'में मकना हाथी वाली कथा एक मिथक है। जो दुराचारियों के विनाश की पूर्व कल्पना पर टिका है। यह मृत्यु और भविष्य के प्रश्न से संबधिक मियकीय घटना है जिसको आधार गोविन्द गुरू एक भजन रचते है।

"अहुडा वाला पाटोड़ में घाणियो धलाये है।

डाकणी जोगिणी घाणी धलाये है।

तेली तम्बोली घाणी पेले है

मकनो हाथी घाणो पेले है।"[25]

भावार्थ यह है भले मनुष्यों में अंधविश्वास पैदा कर अपना स्वार्थ साधना दूराचारी लोगों का कार्य है। यह लोग अंधविश्वास के सहारे सीधे साधे मनुष्यो की आत्मा को आहत करते है उन्हें सताते है। इसका सीधा अर्थ कलयुग आ गया। कलयुग में दूराचारियो की ही चलती है। ईश्वर के घर देर भले ही हो अंधेर नहीं इसलिए इन दुराचारियों को नष्ट करने के लिए मकना हाथी भेजता है। यह हाथी पापियों को पेलने के लिए उन पापियों से भी बड़ा घाणा चलाता है जिसमें उनको पेलकर उनका सर्वनाश कर देता है।एक अन्य मिथकीय कथा मेगड़ी विवाह का भी उल्लेख हुआ है। जिसमें भगवान विष्णु ब्राह्मन के वेश में श्रृंगी ऋषि की पुत्री मगेड़ी के विवाह प्रस्ताव को चार दिन उपरांत स्वीकार करने को कह कर चले जाते हैं। यह चार दिन चार युगों का प्रतीक है। सृष्टि के गतिमान रूप को रेखांकित किया है।

"मारवाड़ में एक संत हुए हैं हीरजी भाटीवे मगेडी की कथा को गाया करते थे "[26]

शिक्षा संस्कृति को प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों में प्रभावित करती है गोविन्द गुरू ने अपने जागृति आन्दोलन में शिक्षा को भी सम्मिलित किया। हरिराम मीणा ने अपने उपन्यास 'धूणी तपे तीर' में आदिवासी शिक्षा के महत्व को रेखांकित किया।

भले बुरे का फैसला करने के लिए पढना आवश्यक है क्योंकि इसी के सहारे उसकी समझ उतरोत्तर प्रगति करती है। जिससे वह जीवन के फैसले स्वम् ले सकता है। जीवन में भले बनने के लिए भले विचार भी जरूरी है।

"मैं तो इनको समझा रहा हूँ कि पढने लिखने से ही से ही आदमी को समझ आति है"[27]

गोविन्द गुरू खास पूंजपारगी के घर पर कही बात भी शिक्षा के महत्व को स्पष्ट करती है

'अक्ल के घोडें पर सवार होकर चेतना आगे बढ़ती है।[28]

लेकिन इस प्रकार की बातें भक्त लोगों के समझ मेंआसानी से नहीं आती। तब कुरिया भक्त कुछ समझाने की कोशिश करता है भक्त और समझदारी का आपसी मजबूत संबंधों का रिश्ता है। जितनी अक्ल होगी उतनी ही समझदारी ज्यादा होगा और समझदारी से ही चेतना आती है लेकिन अक्ल पहली शर्त है। अक्ल के लिए आवश्यक है शिक्षा और थोड़ा बहुत अनुभव हो तो शिक्षा के सहारे उसे तराश सकते है। तराशने के बाद वह समझ में बदल जाता है। इसी के माध्यम से ना समझ लोगों में समझ पैदा की जाती है। इसी समझ से जागृति आती है। अब आदिवासी समुदाय धीरे-धीरे गोविन्द गुरू बाते समझने लगा। गुरू ने समझाया कि महाजन लोग बिना कुछ किए हमसे ज्यादा धनवान हो जाते है राज के आदमी केवल मौज

करते फिरते लेकिन अथाह सम्पति एकत्र कर लेते है हम लोग रात दिन महेनत करते है लेकिन हमें कोई ज्यादा फल नहीं मिलता। इसके पिछे छिपे कारणों को समझना होगा। यह कारण आसानी से समझ में नही आऐगें। क्योकि यह कई वर्षो से हमारी जहन में बैठे हुए हैं। इसलिए आने वाली पीढी को शिक्षित करना होगा। शिक्षिता करने का बेहतर तरीका जगह जगह पर विद्यालय खोलना अच्छा होगा। इनमें शिक्षा का प्रचार प्रसार करना होगा। जिसमें जागृति में गति आयेगी। शिक्षित युवको को रोजगार दिया जाए।डूंगरपुर, खैरवाड़ा, उदयपुर व अन्य शहर में जाकर रोजगार करना विद्यालयी शिक्षा की मुहिम चलाई जाए। अक्षर ज्ञान के साथ साथ सम्प सभा के मुद्दों पर भी ध्यान लगाया जाए।

हरिराम मीणा के शब्दों में कह सकते है ‘‘शिक्षा के जो प्रमुख उद्देश्य तय किये उनमें अक्षर ज्ञान के अलावा जन जागृति के मुद्दे थे और ये कमावेश वही थे जो संप के सिद्धान्त थे।’’[29]

सम्य सभा के विभिन्न उद्देश्य आदिवासी समाज में शैक्षिक विकास को ध्यान में रखककर बनाए थे। भक्तो का झूठ नही बोलना, शालीनता का व्यवहार, बाल विवाह न करना, दुखी और आहत आदमियों की सेवा करना, कन्या मूल्य छोडना, दहेज का विरोध करना व न देना न लेना विधवाओं के प्रति न्याय करना उनकी पुनः शादी करना अस्पृश्यता निवारण करना, परस्त्री के प्रति सम्मान भाव रचाना वृक्षों के प्रति पे्रमभाव रखना व हरे वृक्षो को नहीं काटना आदि उदेश्य शैक्षिक उन्नति को जागृत करने वाले है।’’[30] गोविन्द गुरू स्वंय को आदिवासियों का गुरू मानतें इसके पिछे अपने उदेश्यों में अपने शिष्यों को गुरू मंत्र देकर उनका शिक्षिता कर उनका उत्थान करना शामिल करते है। गोविन्द गुरू बूंदी अखाडे से संबंध रखने वाले राजगिरी गोसाई के शिष्य थें। इन्ही के प्रभाव के कारण में अपने कर्मोंको जोड़कर वे गोविन्दा से गोविन्द गुरू हो गए। दयानंद सरस्वती का प्रभाव इन पर भी पड़ा इसलिए

स्वदेशी का उपदेश दिया करते थे। धूणियों की स्थापना करना एक यज्ञ कर्म समझते है, ढोंगियों का विरोध भी करते है।

आदिवासी समाज का इतिहास लिपि बद्ध की बजाए अलेख्य अधिक है। अतः कह सकते है मौखिक परम्परा का इतिहास जीवन दस्तावेज है जिसके इर्द गिर्द समुचा आदिवासी समुदाय सामुहिक रूप में जमा रहता है।लोक गाथाएँ इनके जीवन की अकूत सम्पदा है। जो प्राचीन काल से ही चली आ रही है। कब से? यह आजतक अनिर्णित है। हिन्दू धर्म में मनुष्य उत्पति की कथा की भाँति इनके यहाँ पर भी मनुष्यउत्पति की कथा है जो बिरमा व भैमाता के रूप में प्रचलित है। जिसमें बताया गया है कि मिटटी का उपयोग लेते हुए भैमाता व बिरमा ने इस धरती पर सर्वप्रथम जिस मनुष्य को बनाया उसका नाम 'भील' रखा था। इसी के तदन्तर मे दूसरा जोड़ा गढ़ा जिसका नाम 'मीणा' रखा था। भीलो को बनाते वक्त काली मिट्टी मिली इसलिए इनका रंग काला रह गया लेकिन 'मीणा'आदिवासीयों का रगं थोड़ा भुरा हो गया। फिर बिरमा के निवेदन से भैमाता ने कुछ नए जोड़े बनाए जिनका रंग सफेद और लाल था। यही लाल रंग वाले मनुष्य फिंरगी है। जिनको कुछ जादू मंतर की जानकारी भी है। अतः कह सकते है कि धूणी तपेतीर में लोकचेतना को अभिव्यक्त करने वाली गाथाओं का भी समावेश है।

विश्वास संस्कृति का हिस्सा होता है। विश्वासमें जब जड़ता आ जाती है तब वह व्याधि का रूप लेकर समाज को पंगु बना देता है जिसमें तरह-तरह के अंध विश्वास फैलते है गोविन्द गुरू अपने भक्तों को अंधविश्वासों से दूर रहने को शिक्षा देते है।'अनजाने में कही-कही औरतों को डायन बताकर मारा पिटा जाता है। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए जानवरों की बली दी जाती है। बीमार हो जाने पर उपचार में झाड़ा-फुंक, जादूमंतरों का सहार लिया जाता है और वानस्पतिक उपचारों से किनारा किया जाता है। लोगों को चमत्कार दिखाई देता है। यह सब बहकाने के काम है। इन अंधविश्वासों की बजाए समस्या की जड़ पहचानों और उसे वही से

नष्ट करों, चमत्कारों के चक्कर में मात पडों। आप सब लोग इन बातो कों समझो।'[31] आदिवासी समुदाय प्राचीन काल से ही सामुहिक जीवन जीता आया है। गंगा सहा या मीणा भी लिखते है कि आदिवासी साहित्य में '' आत्मकथा लेखन केन्द्रीय स्थान नही बना सका, क्योंकि आदिवासी समाज आत्म से अधिक समूह से विश्वास करता है। सामूहिक रूप में कार्य सम्पन करते है।"[32]

धर्म संस्कृति का एक हिस्सा होता है धार्मिक परम्पराएँ आदिवासी समुदाय की जड़े है। वैसे तो आदिवासी समुदास का धर्म प्रकृति धर्म है। इसमें जल, जमीन, जंगल के साथ जानवरों का भी शामिल किया जाता रहा है। यह सही भी है। क्योकि आदिवासी समुदास मिश्रित कृषि में विश्वास करता है। जंगल में ही निवास करने के कारण जंगलो जानवारों से भी अच्छी तरह परिचित होते है। पालतू जानवर तो इनके जीवन का हिस्सा है। उपन्यास धूणी तपेतीर में दल्ली की कहानी के माध्यम से इन समुदायों का पशु प्रेम अच्छी तरह प्रदर्शित हुआ है। दल्ली के साथ अनहोनी घटना के बाद जब दल्ली वापस नहीं लोटी तो बकरियों में सून्न छा गयी। धे इन्तजार करते करते थक गई फिर पांच्या के घर चली गयी।लेकिन आंगन में सिकुड़कर खड़ी हो गई। उनके बच्चों ने माताओं के भावों को भांप लिया और दूध तक नहीं पीया। जानवरों के प्रति समझ प्रदर्शीशित करता यह कथन -

"जानवर घायल कर देता है मार कर खा जाता है।लेकिन इस तरह आबरू नही लेता।"[33]

गोविन्द्र गुरू एकेश्वादी थे। आवागमन से मुक्ति पाने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य सद्कर्मो में विश्वास करे, नैतिक जीवन जीए। उनका कहना था आप लोग स्वच्छता से साधारण सुखी जीवन जीयो। मांस का सेवन नही करें। महिलाओं के प्रति सम्मान की भावना रखो। लड़की मूल्य छोड़ना और विधवा विवाह पर स्वच्छ भाव रखना उच्च सोच का प्रतीक

है। किसी के बहकावे में मत आओ।'हिंदी जातियों में पथ भ्रष्ट की स्थिति पैदा हो गयी है। कोई ब्राह्मण नही रहा, उनकी विधवाएं अवैध संताने लेकर धूम रही है। राजपूतों का अपनी कन्याओं के प्रति क्रुर रवैया है। आप लोग इन बातों को अच्छी तरह समझों। लगन व परिश्रम पर विश्वास रखो।'[34]

प्राचीन कल में स्त्री को पूर्ण स्वतंत्रता थी। शिक्षा का स्तर भी अच्छा रहा होगा क्योकि अपाला, घोषा आदि नाम ऐतिहासिक ग्रंथों में मिलता है। महाभारत में कृष्ण की बहिन सुमद्रा घुड़ सवारी करती थी। धीरे धीरे स्थितियाँ परिवर्तित होती रही। स्त्री को घरों की दीवारों तक सीमित कर दिया। आदिवासियों में स्त्री को काफी हद तक स्वतन्त्रता प्राप्त थी। फिर भी गरीब आदिवासी महिला शोषण का शिकार होती थी। अंग्रेजी शासन काल में औरतों की दशा शोचनीय थी। अंग्रेजी शासन के उच्चाधिकारियों का आदिवासियों के प्रति व्यवहार बहुत खराब था। गैर आदिवासियों औरत का शोषण वस्तु मानकर करते रहे। दल्ली का शारीरिक शोषण कर हत्या कर देना इसका सटीक उदाहरण है। साथ ही उन लोगों का औरत के प्रति शोच का भी पर्दापाश होता है जिसमें उन्होने 'एक टन गिंदोड़ी' 'वन परी'जैसे शब्दों का प्रयोग किया है। शोषण के उपरान्त डराना धमकाना भी किया जाता है। इस बात का सबूत देता एक अंगेज अधिकारी का कथन -

''थोड़ी देर में ठीक हो जायेगी। कोई भी इल्जाम लगा देना,
ससुरी मुंह ही नही खोलेगी।"[35]

दूसरी तरफ गोविन्द गुरू ने आदिवासी लड़कियों मे ऐसी चेतना जागरत करते है कि वह पुरूषों के साथ कंधा मिलाकर खेलती-हसंती और अंततः युद्ध भूमि में भाग लेकर शहीद होती है। कमली का खुला व्यवहार इसका जीता जागता उदाहरण है। जो गैर नाचने में अन्य लड़कियों के साथ लड़को के साथ नाचती है। जब सम्य सभा के सदस्य में तीर धनुष चलाने

का प्रशिक्षण दिया जाता है। इस कार्य का अभ्यास किया जाता है तब कमली अपनी सहेलियों के साथ युद्ध में सम्मिलित होने के लिए गोफन चलाने का अभ्यास करती है। इसके साथ इस अभ्यास में उसकी अस्मिताकी सुरक्षा भी जुड़ी हुई है और इसलिए अपनी सहेलियों से भी इमें सीखने का आग्रह करती है। अपनी सुरक्षा हेतु गोफन चलाना सीखना आदिवासी औरत में आई चेतना का प्रतीक है। मानगढ़ छयाकांड में आदिवासी औरतों गोफनों कुल्हाड़ियों से सज्जित होकर फिरंगियो का मुकाबला करती है। उन्होनें समुह बनाकर मोर्चो संभाला और शहीद हुई इससे स्पष्ट होता है कि इस उपन्यास में आदिवासी महिलाएं अब जागरत हो रही है और तत्पर होकर हर स्थिति का सामना करने में सक्षम होती जा रही है। अब आवश्यकता इस बात की है कि गैर आदिवासीयों का इन आदिवासी औरतों के प्रति नजरिया बदले।

आदिवासी औरत को प्राचीन काल में अपने भविष्य को निर्मित करने की छुट रही है विवाह जैसे बडे और जिम्मेदार फैसले भी वह स्ंवय ले लेती है। भगोरिया एंव घोटुल परम्पराएँ इसकी चश्मदीद गवाह है। जिनमें आदिवासी औरत अपने मनपंसद वर का वरण करती है। किसी की किसी प्रकार की विवशता नहीं। जब उसे लगे उसका वैवाहिक जीवन ठीक ढ़ंग से नही चलरहा है तब वह विवाह विच्छेद कर दूसरा विवाह कर लेती है। यही प्रथा आपके भौतिवादी युगमें पुनः शुरू हो रही है क्योंकि आदिम संस्कार कभी भी समूल नष्ट नहीं होते हैं। इसलिए आये दिन भारतीय न्यायपालिका द्वारा महिला सुरक्षा में कई फैसले देती है और महिला को उसका हल्फनामा सुरक्षा उपलब्ध कराया जा रही है यहाँ यह उपन्यास प्रगतिशील होता दिखाई देता है जिसका सटीक उदाहरण कमली का रात में अपने धर से बहार दूसरे स्थान पर रहना महिला स्वतन्त्रता का दूसरा नाम है लेकिन आदिवासी महिलाओं का अपने पति के प्रति गहरा प्रेम भाव होता हैं।

आदिवासी समुदाय में पति पत्नी के बीच गहरा रिश्ता होता है। औरतें इस रिश्ते को सामान्य तौर प्रदर्शित नहीं करती। इसलिए अपने प्रेम का उजागर गीतों के माध्यम से करती है

कहते है कि गीत हृदय की आवाज जुवां पर आकर फूटती है। गनी को अपने जवानी के दिन याद आते है ज बवह कमली के बालों मे वन मोगरा के फुलों का गजरा गूंथ देती हैं। तब उसे अपने पति संग गाये गीत याद आता है जिसके बोल उसके हृदय में फूटने लगते है।

''चमचम चमके चूनड़ी बनजारा रे बनजारा रे

आ थोड़ी से मेरे संग नाच ले बनजारा रें .....।"[36]

यह तो हुआ पत्नी का अपने पति के प्रति प्रेम भाव का प्रदर्शन। अब पति भी अपनी पत्नी के प्रेम संबंधो को प्रदशिर्त नहीं कर पाता है। यह ईश्वर ने हर व्यक्ति के दिलमें प्रेम की अनुठी तिजोरी बनाई है जिसकी चाबी सपाट बयानी में नहीं चलती। अन्दर से हिलकोर खाने के बाद जब उन हिलकारों की आवाज जबान पर आकर दस्तक देती है तब उसके वास्तविक होने की अनुभूति होती है। गरल्या दीना की पत्नी मर गई। जिसे वे तारों के टूटने मे उसकी आत्मा तलाशता था। तब कभी - कभी उसे यह गीत याद आ जाता था जो उसकी पत्नी उसे संबोधित कर गाती थे।

''राणापुर की कांचलीमाय भरग्यों रे बिछुड़ा

हाँ, बालयगी मरी जाऊँगी।"[37]

अपने मन के भावों को गीतमय वाणी मे प्रकट किया जा रहा है। लोकगीतों में भरी उनकी लोक कथाएँ नई जागृति प्रदान करती है। बाहर से आये लोगों के दबाव ने उन्हे यह महसूस करवा दिया कि उन्हें अपनी संस्कृति बचानी है इसलिए वेसचेत हो गए। डटकर खडें हुए। फिरंगियों और देशी रजवाड़ों ने वहाँ अपना प्रभूत्व कायम करना चाहा, उनकी संस्कृति को मिटाने का प्रयास किया गया, तुम तो जंगलवासी हो दुनियाँ के बारें में नही जानते हो ऐसी हीन भावना भरने की कोशिश की गई। उन्हे असभ्यता की परिभाषा में समेटा गया, असभ्य होने का बोधकरवाया गया। तब गोविन्द गुरू व उनके भक्त कार्यकर्ताओं ने इसे बचाने का

बीड़ा उठाया। अपनी आवाज उठाई, जमीनी संघर्ष शुरू किया। जगह-जगह उन्ही तयाकथिक सभ्य कहलाने वाले लोगों का और उनकी नितियों का खुल्ला विरोध किया। यही विरोध कालान्तर में एक उग्र आन्दोलन में बदल गया।

भारत में शासन स्थापित करने का ब्रिटिश सरकार का मुख्य ध्येय भारत का आर्थिक दोहन था। चाहे जिस तरीके से हो सके दोहन तो करना ही है। इसलिए ब्रिटिश अधिकारियों का ध्यान भारत की अकूत वन सम्प्रदा पर गया। दक्षिणी राजस्थान व उससे सटे प्रदेश इससे अछूते नही रहें।ब्रितानी हुकूमत ने वनों का अधिकाधिक लांभाश प्राप्त करना चाहा। उनकी नीतियों के मुताबिक द्रुतगति से वन विनाश को बढावा मिला। उनका ध्यान वन का विनाश कर उनसे इमारती लकड़ी प्राप्त करना और समतल कृषि योग्य जमीन प्राप्त कर अधिक कर एकत्र करना था। जिससे अरावली की वादियां नग्न होती गयी और आंदिवासी दबते गए। लम्बा चौड़ा जंगल रियासतों से मिली फिरंगियों की ललचाई आँखों में आ गया। मुख्य भूमिका तो रियासती मुखियों की थी जो फिरेगियों को खुश करने के लिए आदिवासी आशियनों को बिखेर रहे थे। वहाँ निवास करने वाले जंगली जानवारों का शिकार किया गया जोहमेशा पारिस्थितिकी संतुलन को बनाए रखतें है। शिकार गृह बनाने की योजना बनने लगी। गोविन्द गुरू उन्हे शिकार गृह बनाने से रोकते है। जोकि प्रत्यक्ष तो बेगार का विरोध है लेकिन परोक्ष कारण वन्य जीवन सुरक्षा की भावना भी है। गोविन्द भक्त पहले से ही वृक्षो के रक्षा कर है अब उनमें यह भावना और अधिक रूप से घर करने लगी।उन्हें रात मे छूना पाप मानन लगें। जिसमे थावरा का उदाहरण सटीक लगता है।

''मगर रात मे पडों व वनस्पतियों को जगाना पाप है।''[39]

प्रकृति की प्रत्येक वस्तु पर उनका अपना अधिकार था। प्रकृति के साथ गहरा तादाम्य था। लेकिन अंग्रेजी सरकार इनके तादाम्य को तोड़ना चाहती थी। जिससे उनमें बौखलाहट पैदा हो रही थी गोविन्द गुरू ये वचन स्पष्ट कर देते है कि

‘‘हमारी जमीन जंगल पहाडों और नदी नालो पर से हमारे पुस्तेनी हक खत्म किये जा रहे है।’’[40]

अतः कह सकते है कि आदिवासी संस्कृति आदिवासी जीवन की सहज और सरल अभिव्यक्ति है, उसमें न तनिक भी लाभ की आशा है न ही कोई गुंजाइश बल्कि आंनदमय समष्टिगत जीवन सामजस्य है। जिसे वह अपनी कृतज्ञता प्रकृट करता है यही आनंद, यही कृतज्ञता और यही सामजस्च सहीत जीवन उसकी विशेषता है पहचान है। इसे गोविन्द गुरू ने जागृतिमय अभियान से बुलंदी पर पहुँचाने में अपना सहयोग प्रदान किया और आदिवासियों ने अपना काम समझ कर पुरा किया गोविन्द गुरू उनके कर्मों के माध्यम बने। इसलिए उनके जीवन में गोविन्द गुरू के प्रमि एक अनूठा ही भाव हैं जिसे वह भूल नहीं पाते। यहाँ बिरसा मुडा के राज ज्यादा महत्वपूर्ण हो उठते हैं।

‘‘हमारे पुरखों ने चीतो-बाधो से लड़कर
जमीन बनाई इस जमीन को
छीनने वाले तुम कौन हो
हम तैयार है तीर-धनुष लेकर लडेंगें
साहूकारों और अंग्रेजों और जमीदारों से।’’[41]

आपराधिक जनजाति अधिनियत, जिसमे आदिवासी जीवन में आमूलचूल परिवर्तन ला दिया, बड़ा दमनकारी अधिनियम था। इस अधिनियम के प्रभाव से आदिवासी जीवन अस्त-व्यस्त होता गया।आदिवासी समस्याओं का अम्बार बढ़ता जाता है। इस समस्याओं को दो भागों में विभजित कर सकत हैं। दिकु या बाहरी लोगों की घुसपेट और अतिक्रमण तथा आन्तरिक समस्याएं। बाहरी शसकों की उपनिवेशवादी और साम्राज्यवादी नीतियों के तहत शोषण पराकाष्टा पर पहुंच गया। उनके अस्तित्व पर ही खरतरा मंडराने लगा ।अपने

अस्तित्वको बचाने के लिए बाहरी और आन्तरिक दोनों शत्रुओं से मुकाबला किया। कभी बहारी लोगों के साथ मिलकर तो कभी अपने ही समाज के लोगों ने नेतृत्त्व में। लेखक ने कथा को विस्तार देते हुए मेवाड में अंग्रेजी सरकार के हस्तेक्षप को दिखाया।

अंग्रेजी सरकार नेकौंसिल ऑफ़ रिजेंसीका गठन किया। राजकाज में नये कानूननों के तहत आदिवासी पर प्रतिबंध लगाये गये। शोषण की प्रक्रिया तेज हुई। जिनमें नई आबकारी निति का लागु करना और जंगलात विभाग खोलना और सबसे बड़ा जरायम पेशा कानून लागु करना था। गोविन्द गुरु के शब्दों में

"रियासत का कोई जागीदार बिना मेहताना भूखे पेट किसी से बेगार करवाता है तो वह कहाँ का न्याय है ...खेती पर लगन बढाया जायेगा। इसलिय खेतों की नाप जोक की जा रही है।"[42]

गोविन्द गुरू बचपन में ही अपने आस पास के इलाके में अपने साथियों व अन्य बड़े बुजुर्गो को यह समझाते आये कि हमारे ऊपर अत्याचार करने वाले लोगों का विरोध करना चाहिए। बेगार नहीं करनी चाहिए। सम्प सभा का गठन एक साधारणा घटना मात्र नहीं थी।बल्कि प्रायोजित व्यवस्था थी। जिसके मूल में आदिवासी चेतना के साथ आदिवासियों में राजनैतिक सर्तकता व समझ भी विकसित करना था। हांलाकि गोविन्द गुरू हर जगह यह कहते मिल जाते है। कि उनका उद्देश्य 'भील राज' की स्थापना करना नही है और यह बात सच्च भी है क्योकिं उनका मूल उद्देश्य तो भक्ति करना था। भक्ति के माध्यम से आदिवासियों मे सुखद वातावरण पैदा करना था। अंग्रेजी सरकार को लिखे गए पत्रों से ज्ञात होता है कि वे सच्चे साधू थे। देशी रजवाड़ों द्वारा तंग किए जाने के कारण मानगढ़ पहाही पर सुरक्षित महसूस कर निवास करते है। गरीब और ना समझ आदिवासी उनके शिष्य है। उनकी समस्याओं व दुखों से अवगत होते है। गुरू होने के नाते उनके शिष्यों की समस्याओं व दुखों

को राज के सामने प्रकट करते हैं कि ताकि राज कुछ सहायता कर सकें। आदिवासी भी अपनी जीवनचर्या मे आराम पा सके थोड़ा सुख प्राप्त कर सके। देशी रजवाड़ों और अंगे्रजी सरकार द्वारा उनके प्रति उपेक्षा भरे व्यवहार के कारण हारकर 'मरता क्या नही करता' कहावत पर चल पड़ते हैं। यह उनकी मजबूरी है। आदिवासी समुदाय अपने अनुशासन में रहते है किसी भी तरह का कही पर भी हस्तक्षेप नहीं करते। सामूहिक जीवन शैली व सामूहिक जनतंत्र मे विश्वास करते है। जवाहर नेहरू के शब्दों में कह सकते है-

"आदिवासी समुदाय में मुझे खूबसारे ऐसे गुण दिखाई देते है जो भारत में वास करने वाले लोगों में, चाहे वे शहरी अथवा ग्रामीण अथवा अन्य कई स्थलों के निवासी हो, नहीं है। इसलिए मैं उनकी तरफ आकृष्ट हुँ। इनका जीवन अनुशासन प्रियजीवन है। जिसमें अन्य समुदायों की तुलना में लोकतांत्रिक गुणों का अधिक अंश समावेशित हैं।"[43]

आदिवासी समुदायों का अपना इतिहास होता है अपनी परम्पराए और भाषा होती है जिसमे वह अपनी सभ्यताऔ संस्कृति की समावेशी दृष्टि देखते है। जब इसका हनन शुरू हुआ तो इन्होंन जागकर शासन के सामने खडा होना स्वीकारा। रमणिका गुप्ता का मानना है कि ''आदिवासीयों ने दी सर्वप्रथम अंगे्रजों के विरूद्ध राजनीतिक और वर्गीय लड़ाईया लड़ी थी।"[44]

पूंजा भक्त सम्प सभा का विस्तार करता रहा। जगह-जगह युवकों को इस सभा में सम्मिलित होने के प्रेरित करता।मानगढ़ धाम भक्ति कर्म के साथ-साथ राजनैतिक व सैनिक प्रशिक्षण स्थल भी बन गया। सरकारी कर्मचारी सेवानिवृत होकर वहाँ आ जाते। वहाँ के युवकों को प्रशिक्षण देते। सामूहिकता की भावना भरी जाती साथ ही साथ आदिवासी परम्परा की पुरानी युद्ध पद्वघति छापामार युद्ध पद्धति का भी प्रशिक्षण दिया जाता। सैदिग्ध व्यक्ति की पहचान करना सामुहिक व्यवहार में हमलो के तरीके सिखाना जिनमें छापामार, अचानक

आक्रमण, शत्रु से छिपना आदि सिखाया जाता था। दुर्गम व खतरनाक जगहों से कैसे बचना व दुश्मन को फंसाना भी वही सिखाया जाने लगा। मार्ग परिवर्तन कैसे करे, साथियों को एकत्र करना व बिखेरने में कौनसी विधियाँ काम में आती है इत्यादि का प्रशिक्षण वहाँ दिया जाता था।

गोविन्द गुरू आदिवासियों की बुरी दशा के जिम्मेदार सही तरीके से अंगे्रजी सरकार को ही मानते थें। हाँ, यह भी मानते थें कि अंग्रेजी नीतियों को क्रिर्यान्वयन करने में देशी रजवाड़ों का अहम् योगदान है। अतः उनका लक्ष्य देशी रजवाडों को नष्ट करते हुए दिल्ली को फिरंगियों से मुक्त कराना था। जबकि इनका मूल ध्येयतो आदिवासी दुखों को नष्ट करना था। राज पर काबिज होना कभी भी इनके लिए महत्वपूर्ण नहीं रहा। इनकी विचारधारा को समझने के लिए इनके इस गीत को सटीक सबूत के रूप मे देखा जा सकता है जो पूजा भाई के साथ बैठकर आग की आँच से तपनें के उपरान्त निर्मित हुआ।

‘‘झालादे माँय मारी डूंगरी है
छाहादे माँय मारो दीयो है
वेणेश्वर माँय मारो चोपड़ों है
मानगढ़ मारों वेरा हैं
भुरेटिया नी मानू रे।”[45]

निष्कर्वतः यह सकते है कि धूणी तपेतीर उपन्यास में आदिवासी चेतना की पुरजोर पुष्टि होती है। जिससे उनके दैनिक जीवन में हर स्तर पर परिवर्तन आ जाता, सोचन समझने, व कार्य करने की पद्धति ही परिवर्तित हो जाती है। इस शीर्षक पर अलग से एक पुस्तक लिखी जा सकती है।

संदर्भ सूची

1. ऐयेप्पन, ऐ, ट्राईब्स इन दी साउथ, सेमिनार (जसल) अक्टूबर 24, 1960 उद्घत एल. पी. माथुर, गोविन्द गिर व उनका आन्दोलन,पृ0 2
2. माथुर, पी. एल. गोविन्द गिर व उनका आन्दोलन, शब्द महिमा प्रकाशन जयपुर स0 2005, पृ0स0 75
3. वही पृ0 76
4. शाह, मुन्ना धूणी तपे तीर समीक्षा सादित्य सृजन नवम्बर 2013
5. मीणा, हरिराम, धूणी तपेतीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, स0 2016, पृ0 25
6. मीणा, हरीराम, मानगढ़ घाम, अलखप्रकाशन, जयपुर, स0 2013, पृ0स0 26
7. शाह, मुन्ना, घूणी तपेतीर, समीक्षा, ए साहित्य सृजन, नवम्बर 2013
8. मीणा, हरिराम, घूणी तपेतीर साहित्य उपक्रम समिति , दिल्ली, स0 2016. पृ0 43
9. वही पृ. 44.45
10. वहीए पृ0 205
11. मीणा, हरिराम, मानगढ़ धाम, अलख प्रकाशन ,जयपुर, 2013, पृ0 60
12. मीणा, हरिराम, जयपुर लिटेस्चर फेस्टिवल 2015 में दिया वक्तव्य
13. मीणा, पिंटुकुमार, मानगढ़ आन्दोलन केन्द्रित हिंदी साहित्य ,अलख प्रकाशन, जयपुर, स0 2013 पृ0 57
14. मीणा, हरिराम, धूणी तपे तीर साहित्य उपक्रम समितिए, दिल्ली , सं .2016, पृष्ट सं. 139
15. मीणा, गंगा सहाय , आदिवसी आन्दोलन और हिंदी उपन्यास :अस्मिता और अस्तित्व का संघर्ष , अनन्य प्रकाशन,दिल्ली, सं. 2016 , पृष्ट. 171
16. मीणा, हरिराम, घूणी तपेतीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, स0 2016, पृ0 154
17. शर्मा,बृजकिशोर, राजस्थान में किसान एवं आदिवासी आन्दोलन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर, स0 2013, पृ0 26

18. वर्मा, धीरेन्द्र वर्मा,हिन्दी साहित्य कोष , ज्ञान मंडल लिमिटेड़, वाराणसी 1

19. वर्धा, हिन्दी शब्द कोश, महात्मागंधी अंतराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा,महाराष्ट्र

20. मीणा, हरिराम, घूणी तपेतीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, स0 2016,पृ0 190

21. वही, पृ0 204

22. वही. पृ0 205

23 वही, पृ0 205

24. कृष्ण, वी एंव भीम सिंह (सम्पावक), आदिवासी विमर्श, स्वराज प्रकाशन दिल्ली, स0 2014, पृ0 80

25. मीणा, हरिराम, घूणी तपेतीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली स0 2016, पृ0

26 वही, पृ0 230

27. वही , पृ024,25

28. वही, पृ0 170

29. वही, पृ0 172

30. वही, पृ0 88

31. वही, पृ0 170

32. मीणा, गंगासहाय, लेख फारवर्ड प्रेस, अपे्रल 15, 2016

33. मीणा, हरिराम, घूणी तपेतीर, साहित्स उपक्रम समिति दिल्ली, स0 2016, पृ0 345

34. मीणा, जगदीश चंद, भील जनजाति का सांस्कृतिक एंव आर्थिक जीवन, हिमांशु प्रकाशन, उदयपुर स0 2003, पृ0 126

35. मीणा, हरिराम,घूणी तपेतीर, साहित्य उपक्रम समिति दिल्ली, स0 2016, पृ0 344

36. वही, पृ0 310

37. वही, 147

38. शर्मा, डी.पी. (सम्पादक), मेवाड़ रियासत एंव जनजातियाँ, प्रताव शोध प्रतिष्ठान उदपुर, स0 2007, पृ0 20

39. मीणा, हरिराम, घूणी तपेतीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, स0 2016 पृ0 135

40. वही, पृ0 186

41. ए. अनुराधा कवि विजेन्द्र कृत कवि की अतंयात्रा मे आदिवासी प्रसंग स. अक्टुबर 2010-11, पृ0 63

42. मीणा, हरिराम, घूणी तपेतीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, स0 2016, पृ. 43.44

43. कृष्ण,वी एंव सिंह भीम (सम्पादक), आदिवासी विमर्श, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, स0 2013 , पृ0 82

44. गुप्ता, रमणिका, आदिवासी लेखन: उभरती चेतना, रमाणिक फाडेशन दिल्ली, स0 2011, पृ0 19

45. मीणा, हरिराम, धुणी तपे तीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, स0 2016, पृ0 308